रत्नावती और एक अन्य

बनाम

कविता गणशमदास

(सिविल अपील सं 9949-9950 / 2014)

29 अक्टूबर, 2014

[फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला और अभय मनोहर सप्रे, न्यायाधिपतिगण]

विनिर्दिष्ट पालना - विनिर्दिष्ट पालना के लिए वाद और स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद - प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा घर की बिक्री का समझौता - मूल स्वामी वादी के पक्ष में - वादी द्वारा प्रतिफल राशि तथा शेष राशि का भुगतान, तथापि, प्रतिवादी सं. 2 द्वारा विक्रय विलेख का निष्पादन न किया जाना - इसके बाद, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा प्रतिवादी संख्या के साथ प्रयास वादी को घर से बेदखल करने के लिए प्रयास-प्रतिवादियों के खिलाफ वादी द्वारा स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा - इसके बाद, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा बिक्री समझौते को रद्द करना और घर प्रतिवादी संख्या 1 को बेचा गया। - प्रतिफल के लिए बाद के क्रेता - वादी द्वारा समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा - विचारण न्यायालय द्वारा दोनों मुकदमों को खारिज कर दिया गया, हालांकि, उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिवादियों के विरूद वाद डिक्री किया गया प्रतिवादीगण को वादी के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित करने और वादी को 4 लाख रुपये की अतिरिक्त राशि का भुगतान प्रतिवादी संख्या 2 को करने के निर्देश के साथ - अपील पर, अभिनिर्धारित किया : आदेश 2 नियम 2 में निहित प्रतिबंध आकर्षित नहीं किया गया ताकि वादी को समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा दायर करने से रोका जा सके क्योंकि संबंधित राहत का दावा करने के लिए कार्रवाई के अलग-अलग कारण और साथ ही राहत का दावा करने के लिए सामग्री भी एक साथ

दायर की जा सकती है- इसके निष्पादन के लिए समय समझौते का सार नहीं - समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए वादी द्वारा दायर मुकदमा अनुच्छेद 54 के तहत निर्धारित तीन वर्षों की सीमा के भीतर था जो तब शुरू हुआ जब वादी ने देखा कि प्रतिवादी ने समझौते की पालना से इनकार कर दिया - तथ्यों के आधार पर, उच्च न्यायालय ने वादी के पक्ष में समझौते के विनिर्दिष्ट पालना को उचित ठहराया - उच्च न्यायालय द्वारा जारी दिशा-निर्देश को बरकरार रखा गया - हालाँकि, प्रतिवादी संख्या 2 और प्रतिवादी संख्या 1 के बीच अनुबंध की निराशा के कारण, प्रतिवादी संख्या 2 को 4 लाख रुपये प्रतिवादी संख्या 1 को वापस करने का निर्देश दिया गया, सभी पक्षों को पर्याप्त न्याय देने के लिए - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 2, नियम 2 - परिसीमा अधिनियम, 1963 - अनुच्छेद 54.

न्यायालय ने अपीलों का निस्तारण करते हुए अभिनिर्धारित किया

: 1.1 वर्तमान मामले में, आदेश 2 नियम 2 सीपीसी में निहित प्रतिबंध दोनों मुकदमों को दायर करने के लिए कार्रवाई के कारण में अंतर के कारण लागू नहीं होता है। स्थायी निषेधाज्ञा का मुकदमा प्रतिवादियों द्वारा वादी को मुकदमे के घर से बेदखल करने की दी गई धमकी पर आधारित था। समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा वादी के पक्ष में समझौते का पालन न करने पर आधारित था, बावजूद इसके कि उसने प्रतिवादी संख्या 2 को अपनी भूमिका निभाने के लिए कानूनी नोटिस दिया था। इसलिए, दोनों मुकदमे कार्रवाई के विभिन्न कारणों पर आधारित थे और इस प्रकार, एक साथ दायर किए जा सकते थे। [पैरा 29,30] [135-सी-एफ]

1.2 यहां तक कि स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा दायर करने की सामग्रियां समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमे की सामग्री से भिन्न हैं। पूर्व के मामले

में, वादी को विशिष्ट राहत अधिनियम 1963 की धारा 38 सपठित आदेश 39 नियम 1 और 2 सीपीसी में दिए गए अनुसार वाद संपत्ति के संदर्भ में तथ्यों पर प्रथम दृष्टया मामले के अस्तित्व, सुविधा के संतुलन और वादी द्वारा होने वाली अपूरणीय क्षति का पता लगाना आवश्यक है। जबकि, बाद के मामले में, वादी को समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए अपनी निरंतर तत्परता और इच्छा को साबित करने और आप यह भी साबित का सकते है कि प्रतिवादी अधिनियम की धारा 16 मे निहित समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने में विफल रहा है।(पेरा 30,31)(135-फ-एच, 136 ए-बी)

1.3 कार्रवाई के एक ही कारण के संबंध में बुनियादी आवश्यकता नहीं बताई गई है क्योंकि राहत का दावा करने की सामग्री भी अलग है, प्रतिवादी (अपीलकर्ता) सीपीसी के आदेश II नियम 2 में निहित प्रतिबंध की याचिका को सफलतापूर्वक उठाने के हकदार नहीं हैं। वादी को प्रतिवादियों के खिलाफ समझौते के विशिष्ट पालन के लिए उसके मुकदमे पर मुकदमा चलाने से रोकें। [पैरा 33][136-सी-डी]

2.1 सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 को पढ़ने मात्र से पता चलता है कि यदि समझौते के प्रदर्शन के लिए तारीख तय की गई है, तो तारीख पर समझौते का अनुपालन न करने पर तीन साल के भीतर जो तारीख तय हुई थी, विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा दायर करने की कार्रवाई का कारण दिया जाएगा। हालाँकि, जब ऐसी कोई तारीख तय नहीं की जाती है, तो विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा दायर करने के लिए तीन साल की सीमा तब शुरू होगी जब वादी ने देखा कि प्रतिवादी ने समझौते के निष्पादन से इनकार कर दिया है। [पैरा 49] [143-डी-ई]

2.2 अनुबंध के खंडों को एक साथ पढ़ने से यह स्पष्ट है कि समय इसके निष्पादन के लिए समझौते का सार नहीं था और पक्षकारो का भी इरादा नहीं था कि

ऐसा होना चाहिए क्योंकि लीज अवधि की समाप्ति के बाद शेष भुगतान करने के बाद भी, जो 1995 में समाप्त होने वाला था, प्रतिवादी नं. 2 मालिक के तौर पर वादी के नाम पर भूमि हस्तांतरित करने के लिए प्रयास करना पड़ा। इसके अलावा, समझौते में कोई विशिष्ट खंड नहीं था, जो किसी विशिष्ट तिथि पर या उससे पहले इसके निष्पादन को पूरा करने का प्रावधान करता हो। [पैरा 46][142-ई-एफ]

2.3 वर्तमान मामला परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 की पहली श्रेणी में नहीं आता है क्योंकि समझौते में इसके निष्पादन के लिए कोई तारीख तय नहीं की गई थी। इस प्रकार, मामला दूसरी श्रेणी द्वारा शासित होगा, अर्थात, जब वादी को नोटिस मिलता है कि पालना से इनकार कर दिया गया है। उच्च न्यायालय के निष्कर्षों को बरकरार रखा गया है। तथ्यों पर, वादी द्वारा समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए दायर किया गया मुकदमा सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 के तहत निर्धारित सीमा के भीतर था। [पैरा 50,52] [143-एफ; 144-बी-सी]

3.1 उच्च न्यायालय ने वादी के पक्ष में निष्कर्षों को दर्ज करने के लिए साक्ष्य की उचित सराहना की कि वह समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक थी और वास्तव में, सबसे पहले, रुपये 50,000/- अग्रिम के रूप में और फिर शेष रु. 3 लाख बिक्री प्रतिफल के रूप में प्रतिवादी संख्या 2 को भुगतान करके अपना हिस्सा निभाया; वह वादी प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा समझौते के अनुसार वादग्रस्त मकान के कब्जे में रखा गया था; और, अंत में प्रतिवादी नं. 2 ने समझौते का अपना हिस्सा पूरा नहीं किया। [पैरा 58][145-ई-एफ]

3.2 उच्च न्यायालय ने डिक्री पारित करते समय दोनों प्रतिवादियों यानी वादग्रस्त मकान (विक्रेता) के मालिक प्रतिवादी नंबर 2 और उसके बाद के खरीदार (प्रतिवादी नंबर 1) को संयुक्त रूप से वादी के पक्ष में वादग्रस्त मकान की बिक्री विलेख

निष्पादित करने का निर्देश दिया, किसी भी कानूनी जटिलता से बचने के लिए, बशर्ते कि वादी वादग्रसत मकान के मालिक (प्रतिवादी संख्या 2) को 3,50,000/- रु. से अधिक चार लाख रूपये का भुगतान करता है। बिक्री विलेख के निष्पादन के लिए उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देश को बरकरार रखा गया है। [पैरा 62, 64] [146-डी-ई; 147-बी]

3.3 डिक्री के संदर्भ में प्रतिवादी द्वारा वादी के पक्ष में बिक्री विलेख के निष्पादन का प्रभाव स्पष्ट रूप से मालिक-प्रतिवादी संख्या 2 और उसके बाद क्रेता-प्रतिवादी सं. 1 के बीच वादग्रस्त मकान की बिक्री के अनुबंध को रद्द कर दिया जाएगा क्योंकि प्रतिवादी संख्या 2 प्रतिवादी संख्या 1 को वादग्रस्त मकान बेचने की स्थिति में नहीं होगी, हालांकि प्रतिवादी संख्या 1 से उसके पक्ष में वादग्रस्त मकान की ऐसी बिक्री के लिए 4 लाख रुपये मिले थे । इस प्रकार, प्रतिवादी संख्या 2 प्रतिवादी संख्या 1 को 4 लाख रुपये वापस करने के लिए उत्तरदायी है और तदनुसार संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति लागू करने का निर्देश दिया जाता है । [पैरा 66, 68, 69][147-डी; जी-एच; 149-बी-सी]

विर्गो इंडस्ट्रीज (इंजी.) पी. लिमिटेड बनाम वेंचरटेक सॉल्यूशंस पी. लिमिटेड 2012 (7) एससीआर 933: (2013) 1 एससीसी 625 - भरोसा व्यक्त किया।

गुरबक्स सिंह बनाम भूरालाल 1964 एससीआर 831: एआईआर 1964 एससी 1810; गोमथिनायगम पिल्लई और अन्य बनाम पल्लानीस्वामी नादर 1967 एससीआर 227: एआईआर 1967 एससी 868; गोविंद प्रसाद चतुवेर्दी बनाम हरिदत्त शास्त्री एवं अन्य 1977 (2) एससीआर 877: (1977) 2 एससीसी 539; श्रीमती चाँद रानी बनाम श्रीमती कमल रानी 1992 (3) पूरक एससीआर 798: (1993) 1 एससीसी 519; के.एस. विद्यानदम और अन्य बनाम वैरावन 1997 (1) एससीआर 993 (1997) 3

एससीसी 1; के. नरेंद्र बनाम रिवेरा अपार्टमेंट्स (पी) लिमिटेड 1999 (3) एससीआर 777: (1999) 5 एससीसी 77; लाला दुर्गा प्रसाद और अन्य बनाम लाला दीप चंद और अन्य 1954 एससीआर 360: एआईआर 1954 एससी 75 - संदर्भित किया गया ।

केस कानून संदर्भ:

1964 एससीआर 831	संदर्भित किया गया	पैरा 27
2012 (7) एससीआर 933	संदर्भित किया गया	पैरा 28
1967 एससीआर 227	संदर्भित किया गया	पैरा 41
1977 (2) एससीआर 877	संदर्भित किया गया	पैरा 42
1992 (3) सप्ल. एससीआर 798	संदर्भित किया गया	पैरा 43
1997 (1) एससीआर 993	संदर्भित किया गया	पैरा 43
1999 (3) एससीआर 777	संदर्भित किया गया	पैरा 43
1954 एससीआर 360	संदर्भित किया गया	पैरा 63

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 9949-9950 /2009।

आरएफए संख्या 1092/2009 सी/डब्ल्यू आरएफए नंबर 1094/2009 में कर्नाटक उच्च न्यायालय बैंगलुरू के निर्णय एवं आदेश दिनांक 08-09-2011 से।

सुश्री नलिनी चिदम्बरम, वरिष्ठ वकील, पी.आर. रामाशेष, एच.एस. प्रशांथ, अपीलकर्ताओं के लिए ।

पी. विश्वनाथ शेट्टी, वरिष्ठ वकील, डॉ. सुशील बलवाड़ा, शरण ठाकुर, अनिरुद्ध देशमुख, विजय कुमार परदेशी, महेश ठाकुर, सुश्री फ़रा, प्रतिवादी के लिए

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति अभय मनोहर सप्रे, द्वारा सुनाया गया। 1. अनुमति प्रदान की गई।

2. वादी ने दो मुकदमे दायर किए, एक समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए और दूसरा मुकदमा घर के संबंध में स्थायी निषेधाज्ञा देने के लिए। विचारण न्यायालय ने सामान्य निर्णय और डिक्री दिनांक 16.10.2001 द्वारा दोनों मुकदमों को खारिज कर दिया। प्रथम अपीलीय अदालत, यानी, उच्च न्यायालय ने अपील में दिनांक 08.09.2011 के आक्षेपित फैसले और डिक्री द्वारा विचारण न्यायालय के फैसले और डिक्री को उलट दिया और प्रतिवादियों के खिलाफ अपील में दोनों मुकदमों का फैसला सुनाया। उच्च न्यायालय के फैसले और डिक्री से व्यथित होकर, प्रतिवादी संख्या 1 और 3 ने वर्तमान सिविल अपील में इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

3. इन अपीलों में विचार के लिए यह प्रश्न उठता है कि क्या वादी द्वारा की गई पहली अपीलों को स्वीकार करना उच्च न्यायालय के लिए उचित था, जिसके परिणामस्वरूप वादग्रस्त मकान के संबंध में प्रतिवादियों के खिलाफ दो सिविल मुकदमों पर फैसला सुनाया गया?

4. सिविल मुकदमों और अब इन अपीलों में शामिल विवाद की सराहना करने के लिए, प्रासंगिक तथ्यों को बताना आवश्यक है।

5. सुविधा के लिए, यहां पक्षकारो का विवरण मूल वाद संख्या 223/2000 से लिया गया है।

6. प्रतिवादी संख्या 2 वादग्रस्त मकान का मूल मालिक है और प्रतिवादी संख्या 1 प्रतिवादी संख्या 2 से वादग्रस्त मकान का अगला खरीदार है।

7. विवाद एक आवासीय मकान संख्या 351 ब्लॉक नंबर 11, मातादहल्ली एक्सटेंशन, जिसे अब आर.टी. नगर बैंगलोर के नाम से जाना जाता है। (इसके बाद "वादग्रस्त मकान " के रूप में जाना जाएगा), से संबंधित है ।

8. वादग्रस्त मकान प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा एक योजना में बैंगलोर विकास प्राधिकरण (संक्षेप में "बीडीए") से खरीदा था। दिनांक 15.02.1989 को प्रतिवादी सं. 2 वादी के साथ वादग्रस्त मकान की बिक्री के लिए कुल रुपये 3,50,000/- के प्रतिफल पर एक समझौते (अनुलग्नक-पी-1) में शामिल हुआ। समझौते के खंड संख्या 2 के संदर्भ में, वादी ने रुपये 50 हजार का बिक्री प्रतिफल के लिये अग्रिम भुगतान किया। ये तथ्य विवादित नहीं हैं.

9. 07.01.2000 को, वादी ने ओएस नंबर 223/2000 के तहत एक सिविल मुकदमा दायर किया, शुरुआत में 3 प्रतिवादियों के खिलाफ संयुक्त रूप से और अलग-अलग प्रतिवादियों को वादग्रस्त मकान पर वादी के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा की मांग की। संक्षेप में, वादी का मामला यह था कि उसने 15.02.1989 को प्रतिवादी संख्या 2 के साथ रूपये 3,50,000/- में वादग्रस्त मकान खरीदने के लिये एक समझौता किया था और रुपये 50 हजार का अग्रिम भुगतान बिक्री प्रतिफलके लिये प्रतिवादी संख्या 2 को किया। बाद में, वादी ने शेष राशि रुपये का भुगतान किया। बिक्री मूल्य के लिए 3 लाख रुपये और इस प्रकार किए गए भुगतान की रसीद प्राप्त की। यह आरोप लगाया गया था कि वादी को तदनुसार वादग्रस्त मकान के वास्तविक भौतिक कब्जे में रखा गया था और तब से वह वादग्रस्त मकान के कब्जे में है। यह कहा लगाया गया था कि उसने पैसे खर्च करके उसमें कुछ सुधार भी किए हैं और बिजली और पानी शुल्क आदि का भुगतान कर रही है। आगे यह कहा गया कि वादी अनुबंध का अपना हिस्सा पूरा करने के बाद अपने पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए समझौते का अपना हिस्सा निष्पादित करने के लिए हमेशा तैयार और

इच्छुक थी। हालाँकि, प्रतिवादी सं. 2, जो कारण उसे सबसे अच्छी तरह ज्ञात है, उसने वादी से पूर्ण बिक्री प्रतिफल प्राप्त करने के बावजूद बिक्री विलेख निष्पादित नहीं किया। यह आरोप लगाया गया कि प्रतिवादी सं. 1, जो वादग्रस्त मकान के लिए पूरी तरह से अजनबी है और वादग्रस्त मकान में उसका कोई अधिकार, स्वामित्व या हित नहीं है, 2.1.2000 को प्रतिवादी संख्या 2 के साथ वादग्रस्त मकान का दौरा किया और कुछ अन्य अवांछित तत्वों ने वादी को मुकदमा घर से बेदखल करने की धमकी दी। यह भी आरोप लगाया गया कि 8.1.2000 को प्रतिवादी नं. 1 और 2 ने फिर से दौरा किया और वादी पर हमला करने का प्रयास किया और वादग्रस्त मकान में अतिक्रमण करने का असफल प्रयास किया।

10. प्रतिवादी संख्या 1 व 2 व उसके सहयोगियो के पक्षद्रोही रवैये को देखकर वादी ने उनके खिलाफ तुरंत संबंधित पुलिस स्टेशन में शिकायत दर्ज कराई। चूंकि पुलिस अधिकारियों ने कोई कार्रवाई नहीं की, जो अपेक्षित थी, वादी ने प्रतिवादियों को वादग्रस्त मकान पर उसके शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा के लिए उपरोक्त सिविल मुकदमा दायर किया। यह प्रस्तुत किया गया था कि वादी के पास प्रथम दृष्टया मामला है, इसलिए सुविधा का संतुलन और अपूरणीय क्षति भी उसके पक्ष में है, जो उसे वादग्रस्त मकान के संबंध में प्रतिवादियों के खिलाफ स्थायी निषेधाज्ञा का दावा करने का अधिकार देती है। वादी ने यह भी कहा कि उसने प्रतिवादियों के खिलाफ समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा दायर करने का अपना अधिकार सुरक्षित रखा है।

11. उपरोक्त मुकदमे का प्रतिवादी संख्या 1 ओर 2 द्वारा विरोध किया गया था। प्रतिवादी संख्या 2 के स्वामित्व को स्वीकार करते हुए वादग्रस्त मकान पर और वादी को इसकी बिक्री के लिए वादी के साथ एक समझौते में प्रवेश करने का तथ्य और इसके अलावा वादी से 50,000/- रुपये के अग्रिम भुगतान की रसीद स्वीकार करते हुए,

प्रतिवादियों ने वाद में लगाए गए सभी महत्वपूर्ण आरोपों से इनकार किया। यह कहा गया कि वादी ने शेष राशि का भुगतान नहीं किया, जैसा कि कहा गया है। यह भी कहा गया कि प्रतिवादी सं. 2 ने 25.10.1995 को वादी को कानूनी नोटिस भेजकर दिनांक 15.02.1989 को अनुबंध रद्द कर दिया और फिर वादग्रस्त मकान को प्रतिवादी संख्या 1 को 09.02.1998 को रु. 4 लाख रुपये में बेच दिया और उसे अपने कब्जे में ले लिया।

12. 31.03.2000 को, वादी ने वादग्रस्त मकान के संबंध में दिनांक 15.02.1989 के समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए प्रतिवादियों के खिलाफ सिटी सिविल जज बैंगलोर की अदालत में ओएस नंबर 2334 /2000 के रूप में एक और सिविल मुकदमा दायर किया।

13. उन्हीं तथ्यों की पैरवी करने के बाद, जो ऊपर दिए गए हैं, वादी ने आगे कहा कि उसने रुपये 3,50,000/- का पूरा बिक्री प्रतिफल का भुगतान करके समझौते का अपना हिस्सा पूर्ण किया है और वादग्रस्त मकान पर काबिज है। यह कहा गया कि एक ओर, प्रतिवादी सं. 2, पूर्ण बिक्री प्रतिफल प्राप्त करने के बावजूद, समझौते के खंड 3 के अनुसार वादग्रस्त मकान को वादी के पक्ष में स्थानांतरित नहीं करके और समझौते के शर्तों के अनुसार जो कार्य करने की उससे अपेक्षा की गई थी, उसे पूरा नहीं किया और दूसरी ओर, वादग्रस्त मकान पर वादी के वैध कब्जे में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया।

14. इसके कारण वादी को प्रतिवादी संख्या 2 को दिनांक 6.3.2000 को एक कानूनी नोटिस देना पड़ा, जिससे प्रतिवादी संख्या 2 को वादी के पक्ष में संपत्ति के संबंध में बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए कहा गया। चूंकि कानूनी नोटिस की सेवा के बावजूद, प्रतिवादी सं. 2 इसे निष्पादित करने में विफल रहा, विशिष्ट

निष्पादन के लिए मुकदमा भी दायर किया गया था। वादी ने तब संशोधन के माध्यम से प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 के पक्ष में निष्पादित कथित बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए एक प्रार्थना भी जोड़ने की मांग की। इस संशोधन की अनुमति दी गई.

15. प्रतिवादियों ने दीवानी मुकदमा लड़ा। वादी के साथ वादग्रस्त मकान की बिक्री रूपये 3,50,000/- के लिए समझौता दिनांक 15.2.1989 के निष्पादन को और वादी द्वारा 50 हजार रूपये का अग्रिम भुगतान प्रतिवादी सं. 2 को स्वीकार करते हुये, प्रतिवादियों ने अन्य सभी भौतिक आरोपों से इनकार किया और अन्य बातों के साथ-साथ कथन किया कि चूंकि वादी प्रतिवादी संख्या 2 को रुपये 3 लाख की शेष बिक्री प्रतिफल का भुगतान समझौते की शर्तों में करने में विफल रहा, प्रतिवादी नं. 2 ने 25.10.1995 को वादी को एक कानूनी नोटिस भेजकर दिनांक 15.2.1989 के समझौते को रद्द कर दिया और वादग्रस्त मकान को प्रतिवादी संख्या 1 को दिनांक 9/2/98 को प्रतिफल के लिये बेच दिया और उसे वादग्रस्त मकान के कब्जे में दे दिया। प्रतिवादियों ने यह भी आरोप लगाया कि प्रतिवादी सं. 1 मूल्य के लिए वास्तविक क्रेता था और इसलिए मुकदमे में उसके स्वामित्व पर सवाल नहीं उठाया जा सकता।

16. प्रतिवादियों ने भी दो कानूनी आधारों पर मुकदमा लड़ा। सबसे पहले, यह तर्क दिया गया कि मुकदमा कायम रखने योग्य नहीं था, क्योंकि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (इसके बाद 'सीपीसी' के रूप में संदर्भित) के आदेश II नियम 2 में निहित रोक वादी को विनिर्दिष्ट पालना के लिए प्रतिवादियों के विरुद्ध विचाराधीन समझौता मुकदमा दायर करने की अनुमति नहीं देती थी। यह आरोप लगाया गया था कि समझौते के विनिर्दिष्ट पालना का दावा करने की राहत वादी को तब उपलब्ध थी जब उसने प्रतिवादियों के खिलाफ स्थायी निषेधाज्ञा के लिए पहला मुकदमा (ओएस नंबर 223/2000) दायर किया था। फिर भी, वादी पहले मुकदमे में राहत का दावा

करने में विफल रहा, परिणामस्वरूप, प्रश्न में समझौते के विनिर्दिष्ट पालना का दावा करने के लिए दायर किया गया दूसरा मुकदमा सीपीसी के आदेश II नियम 2 में निहित कठोरता से प्रभावित है। यह अब प्रतिबंधित है और इसलिए इसे बनाए रखने योग्य नहीं होने के कारण खारिज किया जा सकता है। दूसरे, यह तर्क दिया गया कि परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 54 में दिए गए अनुसार कार्रवाई के कारण उत्पन्न होने की तारीख से तीन साल की अवधि के बाद दायर किए जाने पर मुकदमा अन्यथा परिसीमा द्वारा वर्जित है। इसलिए, यह तर्क दिया गया कि परिसीमा द्वारा वर्जित होने के कारण मुकदमा भी ख़ारिज किया जा सकता है।

17. विचारण न्यायालय ने दोनों मुकदमों को सुनवाई के लिए समेकित कर दिया। मुद्दे तय किये गये. पक्षकारो ने सबूत पेश किए। विचारण न्यायालय ने दिनांक 25.8.2009 के फैसले/डिक्री के माध्यम से हालांकि वादी के पक्ष में कुछ मुद्दों का जवाब दिया लेकिन अंततः सिविल मुकदमों को खारिज कर दिया। यह माना गया कि वादी और प्रतिवादी संख्या 2 के बीच दिनांक 15.02.1989 वादग्रस्त मकान की बिक्री के लिये समझौता निष्पादित किया गया था; कि वादी को प्रश्नगत समझौते के अनुसार वाद मकान के कब्जे में नहीं रखा गया था; कि वादी समझौते में अपना हिस्सा निभाने के लिए तैयार और इच्छुक नहीं थी; वह मुकदमा परिसीमा द्वारा वर्जित है; कि वादी समझौते के विशिष्ट निष्पादन के लिए राहत का दावा करने का हकदार नहीं था; कि वादी स्थायी निषेधाज्ञा के अनुदान के लिए राहत का दावा करने का हकदार नहीं था; वह प्रतिवादी सं. 1 मूल्य के अनुरूप सूट हाउस का वास्तविक क्रेता है; कि वादी दिनांक विक्रय विलेख 9.2.1998 को चुनौती देने का हकदार नहीं था। कि मुकदमा सीपीसी के आदेश 2 नियम 2 में निहित रोक से प्रभावित हुआ था क्योंकि वादी ने प्रतिवादियों के खिलाफ वाद मकान के संबंध में स्थायी निषेधाज्ञा देने के लिए पहला

मुकदमा भरते समय विनिर्दिष्ट पालना के लिए दूसरा मुकदमा दायर करने की अनुमति नहीं ली थी।

18. व्यथित महसूस करते हुए, वादी ने उच्च न्यायालय के समक्ष दो नियमित प्रथम अपील दायर की, आर.एफ.ए. 1092 /2009 और और 1094 /2009। आम आक्षेपित निर्णय/डिक्री द्वारा, उच्च न्यायालय ने दोनों अपीलों को स्वीकार कर लिया, विचारण न्यायालय के फैसले/डिक्री को उलट दिया और वाद मकान के संबंध में प्रतिवादियों के खिलाफ समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए एक डिक्री पारित करके दोनों सिविल मुकदमों का फैसला सुनाया और वादी द्वारा दावा किया गया स्थायी निषेधाज्ञा भी जारी भी किया। उच्च न्यायालय ने उपरोक्त सभी मुद्दों का उत्तर वादी के पक्ष में और प्रतिवादियों के विरुद्ध दिया।

19. उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में माना कि वादी का वाद मकान पर कब्जा था; कि वादी ने समझौते में अपने हिस्से का पालन किया; कि वादी ने संपूर्ण बिक्री प्रतिफल रुपये 3,50,000/- का भुगतान प्रतिवादी संख्या 2 को किया; कि वादी समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक थी; वह प्रतिवादी सं. 2 समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने में विफल रहा, जिससे वह समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए उत्तरदायी हो गया; और वह बाद की बिक्री भले ही प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 के पक्ष में की गई हो, वादी पर बाध्यकारी नहीं थी क्योंकि यह सदभाविक नहीं था।

20. हालांकि, उच्च न्यायालय ने वादी के पक्ष में मुद्दों का फैसला करने के बाद निर्देश दिया कि पक्षकारो के बीच समता को तौलने के लिए और मूल्य वृद्धि को ध्यान में रखते हुए, जो वर्तमान दिनों में अपरिहार्य है, वादी को 3,50,000/- रूपये से उपर 4

लाख रूपये का भुगतान प्रतिवादी संख्या 2 को करना होगा, उसके पक्ष में विक्रय विलेख प्राप्त करने के लिए।

21. उच्च न्यायालय के इस निर्णय/डिक्री के विरुद्ध प्रतिवादियों ने विशेष अनुमति याचिकाओं के माध्यम से वर्तमान अपील दायर की है।

22. अपीलकर्ताओं (प्रतिवादियों) की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्रीमती नलिनी चिदम्बरम ने आक्षेपित निर्णय की वैधता और शुद्धता की आलोचना करते हुए विभिन्न प्रस्तुतियाँ देने का आग्रह किया। सबसे पहले, उसने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने वादी की पहली अपीलों को अनुमति देकर गलती की, क्योंकि उसके अनुसार, विचारण न्यायालय के फैसले/डिक्री को बरकरार रखते हुए दोनों अपीलें खारिज की जा सकती थीं, जिसने मुकदमों को सही ढंग से खारिज कर दिया था। दूसरे, उसने तर्क दिया कि वादी को वाद मकान की बिक्री के समझौते के विशिष्ट निष्पादन का दावा करने के लिए दायर दूसरा मुकदमा सीपीसी के आदेश II नियम 2 में निहित रोक से प्रभावित हुआ था, इस कारण से कि वादी अपने पहले मुकदमे में छुट्टी सुरक्षित करने में विफल रही थी और इसलिए विनिर्दिष्ट पालना के अनुदान के लिए वादी द्वारा दायर किया गया दूसरा मुकदमा चलने योग्य नहीं था। तीसरा, उसने तर्क दिया कि यह मानते हुए कि दूसरे मुकदमे को सुनवाई योग्य ठहराया गया था, तब भी यह सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 में निर्धारित सीमा द्वारा वर्जित था। यह बताया गया कि प्रतिवादियों के खिलाफ अनुबंध के विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा दायर करने की कार्रवाई का कारण वर्ष 1989 में ही उत्पन्न हुआ था, समझौते की तारीख से 60 दिन की अवधि समाप्त होने से पहले ही समझौते के खंड 2 में प्रदान किया गया था, जबकि, मुकदमा विनिर्दिष्ट पालना की मांग करने वाला प्रश्न वर्ष 2000 में दायर किया गया था और इसलिए, इसे अनुच्छेद 54 में निर्धारित सीमा को लागू करने से निराशाजनक रूप से रोक दिया गया था। चौथा, यह तर्क दिया गया था कि किसी भी

मामले में समझौते के विनिर्दिष्ट पालना की मंजूरी से संबंधित निष्कर्षों को उलटने के लिए वादी द्वारा साक्ष्य पर कोई मामला नहीं बनाया गया था क्योंकि वादी समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए न तो तैयार था और न ही इच्छुक था और न ही इस भौतिक मुद्दे पर उनका पक्ष रखने के लिए कोई सबूत था। पांचवां, उसने तर्क दिया कि यह मानने के लिए कोई सबूत नहीं है कि वादी का वाद मकान पर कब्जा था; बल्कि यह मानने के लिए पर्याप्त सबूत थे कि प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा प्रतिवादी नंबर 1 को वाद मकान की बिक्री के बाद, यह प्रतिवादी नंबर 1 था, जो कब्जे में था। इसलिए, यह माना जाना चाहिए था कि वादी का मुकदमा घर पर कब्जा नहीं था, जैसा कि विचारण न्यायालय ने सही माना था। और, अंत में उसने तर्क दिया कि इसे सबूतों की सहायता से आयोजित किया जाना चाहिए था कि प्रतिवादी नं. 1 मूल्य के हिसाब से वाद मकान का वास्तविक खरीदार था, क्योंकि उसने इसे मालिक यानी प्रतिवादी संख्या के बाद खरीदा था। 2 ने दिनांक 15.2.1989 को अनुबंध रद्द कर दिया और फिर वाद मकानको प्रतिवादी संख्या 1 को बेच दिया।

23. अभिलेख पर दस्तावेजों के संदर्भ में विस्तार से बहस करने के बाद, अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि आक्षेपित निर्णय/डिक्री को रद्द कर दिया जाना चाहिए और वादी द्वारा दायर दोनों मुकदमों को खारिज करके विचारण न्यायालय को बहाल किया जाना चाहिए। विद्वान वकील ने कुछ निर्णयों पर भी भरोसा किया, जिनका उल्लेख हम बाद में करेंगे।

24. प्रतिवादी (वादी) के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री पी. विश्वनाथ शेट्टी ने आक्षेपित निर्णय/डिक्री का समर्थन किया और तर्क दिया कि इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। विद्वान वरिष्ठ वकील के अनुसार, उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए सभी निष्कर्ष, उलटे होने के बावजूद, बरकरार रखे जाने योग्य हैं क्योंकि उच्च न्यायालय ने, सीपीसी की धारा 96 के तहत अपनी पहली अपीलीय शक्तियों का प्रयोग

करते हुए, सबूतों की सही सराहना की और अपने स्वतंत्र रुख पर आ गया। निष्कर्ष जो वह कानूनी रूप से कर सकता था और जो उसने दो प्रथम अपीलों की अनुमति देते समय सही ढंग से किया। विद्वान वकील ने आग्रह किया कि तीन अपीलों पर सुनवाई करने वाली यह अदालत पहली अपील की तरह पूरे सबूतों की फिर से सराहना करने की कवायद नहीं कर सकती है, सिवाय इसके कि यह पता लगाया जाए कि क्या आक्षेपित फैसले में कोई स्पष्ट कानूनी त्रुटि है ताकि इस न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप की मांग की जा सके । विद्वान वरिष्ठ वकील ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित निर्णय में ऐसी कोई त्रुटि नहीं है और इसलिए ये अपीलें खारिज किए जाने योग्य हैं।

25. पक्षों के विद्वान वकील को विस्तार से सुनने और मामले के अभिलेख को पढ़ने के बाद, हमें इन अपीलों में कोई योग्यता नहीं मिली, जैसा कि हमारी सुविचारित राय में, अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा आग्रह किया गया था, हालांकि अच्छी तरह से तर्क दिया गया था, कोई बल नहीं है।

26. सबसे पहले कानूनी प्रश्न पर आते हैं कि क्या सीपीसी के आदेश II नियम 2 में निहित रोक लगाई गई है ताकि वादी को समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा दायर करने से रोका जा सके, हमारी राय में, प्रतिबंध आकर्षित नहीं है।

27. सबसे पहले, हम गुरबक्स सिंह बनाम भूरालाल, एआईआर 1964 एससी 1810 में इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा निर्धारित कानून पर ध्यान देना उचित समझते हैं, जिसमें इस न्यायालय ने आदेश II नियम 2 सीपीसी के वास्तविक दायरे की व्याख्या करते हुए मानदंड निर्धारित किए कि कैसे और किन परिस्थितियों में वादी के खिलाफ याचिका दायर की जानी चाहिए। न्यायमूर्ति अय्यंगार ने पीठ के लिए बोलते हुए निम्नानुसार कहा:

"सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2 नियम 2(3) के तहत बार की याचिका को सफल बनाने के लिए, याचिका उठाने वाले प्रतिवादी को यह बताना होगा कि (1) दूसरा मुकदमा कार्रवाई के उसी कारण के संबंध में था जैसा कि वह जिस पर पिछला मुकदमा आधारित था; (2) कि कार्रवाई के उस कारण के संबंध में वादी एक से अधिक राहत का हकदार था; (3) इस प्रकार वादी एक से अधिक राहत का हकदार है, न्यायालय से बिना अनुमति प्राप्त किए उस राहत के लिए मुकदमा करना छोड़ दिया जिसके लिए दूसरा मुकदमा दायर किया गया था । इस विश्लेषण से यह देखा जाएगा कि प्रतिवादी को प्राथमिक रूप से और सबसे पहले, कार्रवाई का सटीक कारण स्थापित करना होगा जिस पर पिछला मुकदमा दायर किया गया था, जब तक कि कार्रवाई के कारण के बीच पहचान न हो जिस पर पहले का मुकदमा दायर किया गया था और जिस पर बाद के मुकदमे में दावा आधारित है, वहां रोक लगाने की कोई गुंजाइश नहीं होगी..."

(जोर दिया गया)

28. इस न्यायालय ने बाद के वर्षों में कानून के उपरोक्त प्रतिपादन का लगातार पालन किया है और विर्गो इंडस्ट्रीज (इंजी.) पी. लिमिटेड बनाम वेंचरटेक सॉल्यूशंस पी. लिमिटेड, (2013) 1 एससीसी 625 में ऐसे हालिया निर्णयों में से केवल एक का संदर्भ दिया जाना पर्याप्त होगा, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में कानून के सिद्धांत को दोहराया:

> "इसलिए, आदेश II नियम 2(2) और (3) में निहित प्रावधानों को लागू करने की मुख्य आवश्यकता यह है कि बाद के मुकदमे में कार्रवाई का कारण पहले मुकदमे के समान होना चाहिए। उक्त अभिव्यक्ति के सही अर्थ पर किसी भी प्रवचन में प्रवेश करने के लिए

यह पूरी तरह से अनावश्यक होगा, अर्थात् कार्रवाई का कारण, विशेष रूप से, चर्च ऑफ क्राइस्ट चैरिटेबल ट्रस्ट और एजुकेशनल चैरिटेबल सोसाइटी में इस न्यायालय के एक हालिया फैसले वी. पोन्नियम्मन एजुकेशनल ट्रस्ट रिप्रजेंटेड बाई इटस चेयरपर्सन/मैनेजिंग ट्रस्टी 2012 (6) एससी 149 में स्पष्ट प्रतिपादन के मद्देनजर किया जाता है। उपलब्ध न्यायिक घोषणाओं सहित इस मुद्दे पर दी गई बड़ी संख्या में राय मूल रूप से इंग्लैंड के हेल्सबरी के कानूनों (चौथा संस्करण) में कही गई बातों से अलग नहीं होती है, इसलिए, उपरोक्त कार्य से निम्नलिखित संदर्भ यहां नीचे निकाले जाने के लिए उपयुक्त होगा:

कार्रवाई के कारण को केवल एक तथ्यात्मक स्थिति के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसके अस्तित्व में एक व्यक्ति को अदालत से दूसरे व्यक्ति के खिलाफ उपाय प्राप्त करने का अधिकार मिलता है। यह वाक्यांश प्राचीन काल से ही माना जाता रहा है कि इसमें हर उस तथ्य को शामिल किया गया है जो वादी को सफल होने का अधिकार देने के लिए साबित होने योग्य है, और हर उस तथ्य को शामिल करने के लिए जिसे प्रतिवादी के पास पार करने का अधिकार होगा। 'कार्रवाई का कारण' का मतलब प्रतिवादी की ओर से उस विशेष कार्रवाई से भी लिया गया है जो वादी को उसकी शिकायत का कारण, या कार्रवाई के लिए शिकायत का विषय-वस्तु देता है, न कि केवल कार्रवाई का तकनीकी कारण।"

29. वर्तमान मामले में जब हम उपर्युक्त सिद्धांत को लागू करते हैं, तो हम पाते हैं कि आदेश II नियम 2 में निहित रोक दो मुकदमों को दायर करने के लिए कार्रवाई के कारण में अंतर के कारण आकर्षित नहीं होती है। जहां तक स्थायी निषेधाज्ञा के मुकदमे का सवाल है, यह प्रतिवादियों द्वारा वादी को 2.1.2000 और 9.1.2000 को वाद घर से बेदखल करने की दी गई धमकी पर आधारित था। यह बात वाद पत्र के पैरा 17 को पढ़ने से स्पष्ट हो जायेगी। जहां तक समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा दायर करने की कार्रवाई के कारण का सवाल है, यह प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दिनांक 15.2.1989 के समझौते के वादी के पक्ष में अपनी भूमिका निभाने के लिए गैर-पालना पर आधारित था, प्रतिवादी संख्या 2 को दिनांक 6.3.2000 का अपने भाग की पालना करने के लिये कानूनी नोटिस देने के बावजूद।

30. हमारी सुविचारित राय में, इसलिए, दोनों मुकदमे कार्रवाई के विभिन्न कारणों पर आधारित थे और इसलिए एक साथ दायर किए जा सकते थे। वास्तव में स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा दायर करने की सामग्रियां भी समझौते के विनिर्दिष्ट पालना निष्पादन के लिए मुकदमे की सामग्री से भिन्न हैं

31. पूर्व के मामले में, वादी को विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 (संक्षेप में "अधिनियम") की धारा 38 सपठित आदेश 39 नियम 1 एवं 2 सीपीसी में दिए गए अनुसार मुकदमे की संपत्ति के संदर्भ में तथ्यों पर प्रथम दृष्टया मामले के अस्तित्व, सुविधा के संतुलन और वादी द्वारा होने वाली अपूरणीय क्षति का पता लगाना आवश्यक है। जबकि, बाद के मामले में, वादी को समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए अपनी निरंतर तत्परता और इच्छा को साबित करने और यह साबित करने की आवश्यकता होती है कि प्रतिवादी अधिनियम की धारा 16 में निहित समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने में विफल रहा है।

32. सीपीसी के आदेश II नियम 2 की याचिका को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए बुनियादी आवश्यकताओं में से एक यह है कि दूसरे मुकदमे के प्रतिवादी को यह दिखाने में सक्षम होना चाहिए कि दूसरा मुकदमा भी कार्रवाई के उसी कारण के संबंध में था जिस पर पिछला मुकदमा आधारित था।

33. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, चूंकि मौजूदा मामले में, कार्रवाई के कारण के संबंध में यह बुनियादी आवश्यकता नहीं बताई गई है, प्रतिवादी (यहां अपीलकर्ता) सीपीसी के आदेश II नियम 2 में निहित रोक की याचिका उठाने के हकदार नहीं हैं। प्रतिवादियों के विरुद्ध समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए वादी को उसके मुकदमे पर मुकदमा चलाने से सफलतापूर्वक वंचित करना।

34. वास्तव में जब संबंधित राहत का दावा करने के लिए कार्रवाई का कारण अलग-अलग था और राहत का दावा करने की सामग्रियां भी अलग-अलग थीं, तो हम इस बात की सराहना करने में विफल रहे कि प्रतिवादियों द्वारा आदेश II नियम 2 की याचिका को उठाने की अनुमति कैसे दी जा सकती है और यह कैसे ऐसे तथ्यों पर कायम था.

35. हम अपीलकर्ताओं के वरिष्ठ वकील की दलील को स्वीकार नहीं कर सकते, जब उसने तर्क दिया कि चूंकि दोनों मुकदमे समान दलीलों पर आधारित थे और जब समझौते के विनिर्दिष्ट पालना की राहत के लिए मुकदमा दायर करने के लिए कार्रवाई का कारण वादी को पहला वाद दाखिल करने से पहले उपलब्ध था, दूसरा मुकदमा सीपीसी के आदेश II नियम 2 में निहित प्रतिबंध से पीडित है।

36. प्रस्तुतीकरण में दो बुनियादी कारणों से भ्रांति है। सबसे पहले, जैसा कि ऊपर कहा गया है, दो मुकदमों में कार्रवाई का कारण अलग-अलग होने के कारण, पहले मुकदमे की कार्रवाई के कारण के आधार पर विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा

स्थापित नहीं किया जा सकता था। दूसरे, केवल इसलिए कि दोनों मुकदमों की दलीलें कुछ हद तक समान थीं, प्रतिवादीगण को आदेश 2 नियम 2 सीपीसी में निहित प्रतिबंध की दलील उठाने का अधिकार प्रदान नहीं करती है। यह कार्रवाई का कारण है जो आदेश II नियम 2 के तहत बार की प्रयोज्यता को निर्धारित करने के लिए महत्वपूर्ण है, न कि केवल दलीलों के लिए। इन कारणों से, वादी को दूसरा मुकदमा दायर करने के लिए सीपीसी के आदेश II नियम 2 के अनुसार अदालत से कोई अनुमति प्राप्त करना आवश्यक नहीं था।

37. चूंकि आदेश II नियम 2 की दलील को यदि बरकरार रखा जाता है, तो वादी को दूसरा मुकदमा दायर करने से वंचित कर दिया जाता है, इसलिए अदालत के लिए दोनों मुकदमों के संपूर्ण तथ्यात्मक मैट्रिक्स की सावधानीपूर्वक जांच करना आवश्यक है, जिस पर कार्रवाई का कारण है, जिन पर मुकदमों की स्थापना की गई है, दोनों मुकदमों में राहत का दावा किया गया है और अंत में दोनों मुकदमों में राहत देने के लिए लागू कानूनी प्रावधान हैं।

38. पूर्वगामी चर्चा के आलोक में, हमें इस मुद्दे पर उच्च न्यायालय के निष्कर्ष को बरकरार रखने में कोई हिचकिचाहट नहीं है। इसलिए, हमारा मानना है कि समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए वादी द्वारा दायर दूसरा मुकदमा (ओएस नंबर 2334, 2000) सीपीसी के आदेश II नियम 2 में निहित रोक के आधार पर वर्जित नहीं था।

39. यह हमें अगले प्रश्न पर ले जाता है कि क्या विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 के तहत निर्धारित सीमा द्वारा वर्जित था?

40. इस प्रश्न की जांच करने के लिए, पहले इस मुद्दे पर कानून को देखना जरूरी है कि क्या अचल संपत्ति बेचने के समझौते के निष्पादन के लिए समय सार हो सकता है और यदि हां, तो क्या इस मामले में वादी ने अपनी भूमिका निर्धारित समय में निभाई है, जो समझौते में दी गई है?

41. विद्वान न्यायाधीश जे.सी. शाह (जैसा कि वे तब थे) ने पीठ की ओर से बोलते हुए गोमथिनायगम पिल्लई और अन्य बनाम पल्लनीस्वामी नादर, एआईआर 1967 एससी 868 में इस मुद्दे की जांच की, अंग्रेजी अधिकारियों और अनुबंध अधिनियम की धारा 55 के आलोक में और निम्नानुसार आयोजित किया गया:

"यह केवल समय के विनिर्देशन के कारण या जिसके पहले अनुबंध के तहत किए जाने वाले कार्य को करने का वादा किया गया है और उसके अनुपालन में चूक के कारण नहीं है, कि दूसरा पक्ष अनुबंध से बच सकता है। ऐसा विकल्प तभी उत्पन्न होता है जब पक्षकारो का ऐसा इरादा होता है कि समय अनुबंध का सार है। सार का समय बनाने का इरादा, यदि लिखित रूप में व्यक्त किया गया है, तो ऐसी भाषा में होना चाहिए जो असंदिग्ध हो: इसे बेचने के लिए सहमत संपत्ति की प्रकृति से भी अनुमान लगाया जा सकता है, अनुबंध पर या उससे पहले पक्षकारो का आचरण और आसपास की परिस्थितियाँ। अनुबंध का विनिर्दिष्ट पालना आम तौर पर दिया जाएगा, निर्दिष्ट अवधि के भीतर अनुबंध को पूरा करने में डिफ़ॉल्ट के बावजूद, यदि पक्षकारो की स्पष्ट शर्तों, प्रकृति को ध्यान में रखते हुए संपत्ति और आसपास की परिस्थितियों के कारण, राहत देना असमान नहीं है। यदि अनुबंध अचल संपत्ति की बिक्री से संबंधित है, तो आमतौर पर यह माना जाएगा कि समय अनुबंध का सार नहीं था। डिफ़ॉल्ट के मामले में जुर्माना लगाने वाले खंड के लिखित समझौते में शामिल होने मात्र से ही सार का समय निकालने का इरादा नहीं हो जाता है। जमशेद खोदाराम ईरानी बनाम बुरजोरजी धुनजीभाई I.L.R.40 बोम 289 मे प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति ने देखा कि

अनुबंध अधिनियम की धारा 55 में अंतर्निहित सिद्धांत भूमि की बिक्री के अनुबंधों के संबंध में इंग्लैंड के कानून के तहत प्राप्त सिद्धांतों से भिन्न नहीं है। न्यायिक समिति ने देखा:

> "उस कानून के तहत समता, जो अचल संपत्ति बेचने के लिए अनुबंधों के विनिर्दिष्ट पालना के मामलों में पक्षकारो के अधिकारों को नियंत्रित करती है, यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या पक्षकार, इसके बावजूद कि उन्होंने एक नाम दिया है, पत्र को नहीं बल्कि समझौते के सार को देखती है। विशिष्ट समय जिसके भीतर पूरा होना था, वास्तव में और सार रूप में उससे अधिक का इरादा था जो उचित समय के भीतर पूरा होना चाहिए था... उनके आधिपत्य की राय है कि यह वह सिद्धांत है जिसे भारतीय क़ानून की धारा भूमि की बिक्री के संदर्भ में अपनाती है और लागू करती है। इसे टिली बनाम थॉमस आई.एल.आर. (1867) चौ. 61 मामले में लॉर्ड कैम्स द्वारा इस्तेमाल की गई भाषा में संक्षेप में कहा जा सकता है। :-
>
> 'निर्माण न्यायलय की तरह ही समानता में होता है और होना भी चाहिए। समता कोर्ट वास्तव में अनुबंध द्वारा निर्दिष्ट तिथियों को पूरा करने के लिए, या पूरा होने की दिशा में कदम उठाने में विफलता के बावजूद, विनिर्दिष्ट पालना के खिलाफ राहत देगा और लागू करेगा, यदि यह पक्षकारो के बीच न्याय कर सकता है, और यदि (जैसा कि लॉर्ड जस्टिस ट्युमर ने रॉबर्ट्स बनाम बेरी (1853) 3. डी जी.एम.जी. 284 में कहा था, 'पक्षों के बीच स्पष्ट शर्तों, संपत्ति की प्रकृति, या आसपास की परिस्थितियों' में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो हस्तक्षेप करने को असमान बना दे और कानूनी अधिकार के साथ और संशोधित

करें। यही मतलब है, और यही सब मतलब है, जब यह कहा जाता है कि समता में समय अनुबंध का सार नहीं है। तीन आधारों में से... लॉर्ड जस्टिस टर्नर द्वारा उल्लिखित 'एक्सप्रेस शर्तों' के लिए किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। 'संपत्ति की प्रकृति' को प्रत्यावर्तन, खदानों या व्यापारों के मामले से दर्शाया गया है। 'आसपास की परिस्थितियाँ' प्रत्येक विशेष मामले के तथ्यों पर निर्भर होनी चाहिए।"

42. गोविंद प्रसाद चतुर्वेदी बनाम हरि दत्त शास्त्री और अन्य, (1977) 2 एससीसी 539 में, इस न्यायालय ने गोमथिनायगम पिल्लई (उपरोक्त) में निर्धारित कानून पर भरोसा करते हुए, उपरोक्त सिद्धांत को दोहराया और निम्नानुसार रखा:

..यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि समझौते में इस्तेमाल की गई भाषा ऐसी नहीं है जिससे स्पष्ट शब्दों में संकेत मिले कि समय अनुबंध का सार है। समय को अनुबंध का सार मानने का इरादा उन परिस्थितियों से प्रमाणित हो सकता है जो सामान्य धारणा को विस्थापित करने के लिए पर्याप्त रूप से मजबूत हैं कि भूमि की बिक्री के अनुबंध में समय की शर्त अनुबंध का सार नहीं है।

सामान्य धारणा के अलावा कि अचल संपत्ति की बिक्री के समझौते के मामले में समय अनुबंध का सार नहीं है और तथ्य यह है कि समझौते की शर्तें स्पष्ट रूप से यह नहीं बताती हैं कि समय को अनुबंध का सार समझा गया था न तो दलीलों में और न ही मुकदमे के दौरान उत्तरदाताओं ने यह तर्क दिया कि समय अनुबंध का सार था।"

43. श्रीमती चाँद रानी बनाम श्रीमती कमल रानी, (1993) 1 एससीसी 519 में दर्ज मामले में फिर से, इस न्यायालय ने उपरोक्त दो मामलों में निर्धारित कानून पर भरोसा करते हुए एक ही दृष्टिकोण अपनाया। के.एस. विद्यानदम और अन्य बनाम

वैरावन, (1997) 3 एससीसी 1 में इस मुद्दे पर अधिक विस्तार से इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया गया था, जिसमें इसे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:

"कुछ प्रारंभिक अंग्रेजी निर्णयों के बाद, भारत में अदालतों द्वारा लगातार यह माना गया है कि अचल संपत्ति से संबंधित बिक्री के समझौते के मामले में, समय अनुबंध का सार नहीं है जब तक कि विशेष रूप से उस प्रभाव के लिए प्रदान नहीं किया जाता है। की अवधि मुकदमा दायर करने के लिए सीमा अधिनियम द्वारा निर्धारित सीमा तीन वर्ष है। इन दो परिस्थितियों से, यह समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए किसी भी और हर मुकदमे का पालन नहीं करता है (जो विशेष रूप से यह प्रदान नहीं करता है कि समय अनुबंध का सार है) डिक्री की जानी चाहिए, बशर्ते कि इसे एक या दूसरे पक्ष द्वारा एक या दूसरे कार्य करने के लिए समझौते में निर्धारित समय-सीमा के बावजूद सीमा की अवधि के भीतर दायर किया गया हो। इसका मतलब यह होगा कि पार्टियों द्वारा निर्धारित समय-सीमा समझौते का कोई महत्व या मूल्य नहीं है और उनका कोई मतलब नहीं है। क्या ऐसा कहना उचित होगा क्योंकि समय को अनुबंध का सार नहीं बनाया है, समझौते में निर्दिष्ट समय-सीमा की कोई प्रासंगिकता नहीं है और इसे दण्ड से मुक्ति के साथ अनदेखा किया जा सकता है? इसका मतलब धारा 10 और 20 दोनों द्वारा न्यायालय में निहित विवेक को अस्वीकार करना भी होगा। जैसा कि चांद रानी बनाम कमल रानी (1993) 1 एससीसी 519 में इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा आयोजित किया गया था:

> "...यह स्पष्ट है कि अचल संपत्ति की बिक्री के मामले में समय के बारे में कोई धारणा नहीं है कि यह अनुबंध का सार है। भले ही यह अनुबंध का सार नहीं है, न्यायालय यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि यह अनुबंध का सार है। उचित समय में निष्पादित किया जाना चाहिए यदि शर्तें (स्पष्ट?) हैं: (1) अनुबंध की स्पष्ट शर्तों से; (2)

संपत्ति की प्रकृति से; और (3) आसपास की परिस्थितियों से, उदाहरण के लिए, अनुबंध बनाने का उद्देश्य।"

दूसरे शब्दों में, अदालत को समझौते में निर्दिष्ट समय-सीमा सहित सभी प्रासंगिक परिस्थितियों को देखना चाहिए और यह निर्धारित करना चाहिए कि क्या विनिर्दिष्ट पालना देने के लिए उसके विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए। अब भारत में शहरी संपत्तियों के मामले में, यह सर्वविदित है कि पिछले कुछ दशकों में उनकी कीमतें तेजी से बढ़ रही हैं - खासकर 1973 के बाद।

"... वास्तव में, हम यह सोचने में इच्छुक हैं कि उस समय अदालतों द्वारा विकसित नियम की कठोरता अचल संपत्तियों के मामले में अनुबंध का सार नहीं है - ऐसे समय में विकसित हुई जब कीमतें और मूल्य स्थिर थे और मुद्रास्फीति अज्ञात थी - विशेष रूप से शहरी अचल संपत्तियों के मामले में, यदि संशोधित नहीं किया गया है, तो इसमें ढील देने की आवश्यकता है। अब समय आ गया है, हम ऐसा करें....."

उपरोक्त दृष्टिकोण को के. नरेंद्र बनाम रिवेरा अपार्टमेंट्स (पी) लिमिटेड (1999) 5 एससीसी 77 में बरकरार रखा गया था।

44. इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के उपरोक्त सिद्धांत को मामले के तथ्यों पर लागू करने में, हमें यह मानने में कोई झिझक नहीं है कि समय इसके पालना के लिए समझौते का सार नहीं था और पक्षकारो का भी इरादा नहीं था कि ऐसा होना चाहिए।

45. समझौते के खंड 2 और 3 (अनुलग्नक पी-1), जो इस प्रश्न को तय करने के लिए प्रासंगिक हैं, इस प्रकार हैं:

> "2. क्रेता इस समझौते पर हस्ताक्षर करते समय विक्रेता को अग्रिम के रूप में 50,000/- रुपये (पचास हजार रुपये मात्र) का भुगतान करेगा, जिसकी रसीद विक्रेता द्वारा स्वीकार की जाएगी और शेष बिक्री प्रतिफल राशि का भुगतान लीज अवधि की समाप्ति की तारीख से 60 दिनों के भीतर किया जाएगा।
>
> 3. विक्रेता क्रेता के साथ अनुबंध करता है कि जुर्माना अदा करने के बाद क्रेता के पक्ष में अनुसूची संपत्ति के हस्तांतरण के लिए बैंगलोर विकास प्राधिकरण के साथ प्रयास किए जाएंगे। यदि यह संभव नहीं है तो शेष भुगतान और बिक्री लेनदेन को पूरा करने के लिए यहां निर्धारित समय पर पक्षकारो के बीच आपसी सहमति होगी।"

46. दोनों खंडों को एक साथ पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि समझौते को पूरा करने के लिए समय को पक्षकारो द्वारा अनुबंध का सार नहीं बनाया गया था क्योंकि लीज अवधि की समाप्ति के बाद शेष भुगतान करने के बाद भी, जो कि 1995 में समाप्त होना था, प्रतिवादी नं. 2 मालिक के रूप में वादी के नाम पर भूमि हस्तांतरित करने के लिए प्रयास करना पड़ा। इसके अलावा, हमें समझौते में कोई विशिष्ट खंड नहीं मिला, जो किसी विशिष्ट तिथि पर या उससे पहले इसके निष्पादन को पूरा करने का प्रावधान करता हो।

47. चूंकि यह वादी का मामला था कि उसने प्रतिवादी संख्या 2 को संपूर्ण बिक्री प्रतिफल का भुगतान किया और तदनुसार उसे वाद मकान के कब्जे में रखा गया था, सन 2000 में वाद मकान से उसे बेदखल करने की धमकी इस तथ्य के साथ जुड़ी हुई

थी कि उसे पता चला था कि प्रतिवादी नं. 2 वाद मकान से अलग करने की कोशिश कर रहा था, 6.3.2000 को प्रतिवादी संख्या 2 को कानूनी नोटिस देने के लिए उसे कार्रवाई का कारण दिया गया, जिसमें प्रतिवादी संख्या 2 को अपना हिस्सा निभाने और उसके पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित करके वाद घर में स्वामित्व बताने के लिए कहा गया। चूंकि प्रतिवादी सं. 2 स्वामित्व बताने में विफल रही, वादी ने समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए 31.3.2000 को मुकदमा दायर किया।

48. परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 54 जो विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा दायर करने के लिए परिसीमा की अवधि निर्धारित करता है, इस प्रकार है:

54.	अनुबंध की विनिर्दिष्ट पालना के लिये	3 साल	निष्पादन के लिए निर्धारित तिथि या, यदि ऐसी कोई तिथि निश्चित नहीं है, जब वादी को नोटिस मिले कि निष्पादन से इनकार कर दिया गया है।

49. सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 को पढ़ने मात्र से पता चलेगा कि यदि समझौते की पालना के लिए तारीख तय की गई है, तो तारीख पर समझौते का अनुपालन न करने पर तीन साल के भीतर विनिर्दिष्ट पालना के लिए इस प्रकार निर्धारित तिथि से मुकदमा दायर करने की कार्रवाई का कारण दिया जाएगा। हालाँकि,

जब ऐसी कोई तारीख तय नहीं की जाती है, तो विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा दायर करने के लिए तीन साल की सीमा तब शुरू होगी जब वादी ने देखा कि प्रतिवादी ने समझौते के निष्पादन से इनकार कर दिया है।

50. माना गया मामला सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 की पहली श्रेणी में नहीं आता है क्योंकि जैसा कि ऊपर देखा गया है, इसके निष्पादन के लिए समझौते में कोई तारीख तय नहीं की गई थी। इस प्रकार मामला दूसरी श्रेणी द्वारा शासित होगा, जब वादी को नोटिस मिलता है कि पालना से इनकार कर दिया गया है।

51. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह वादी का मामला था कि उसे 02.01.2000 और 09.01.2000 को पता चला कि वाद मकान का मालिक तथाकथित इच्छुक खरीदार के साथ उसे वाद मकान से उनके वाद मकान पर स्वामित्व के बल पर बेदखल करने की कोशिश कर रहा है। यह स्थिति, इसलिए, प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा समझौते को निष्पादित करने से इनकार करने के शुरुआती बिंदु के रूप में थी, जिसके परिणामस्वरूप वादी द्वारा 6.3.2000 को प्रतिवादी नंबर 2 को नोटिस दिया गया और फिर 31.3.2000 को मुकदमा दायर किया गया।

52. पूर्वगामी चर्चा के आलोक में, हम उच्च न्यायालय के निष्कर्षों को बरकरार रखते हैं और तदनुसार मानते हैं कि समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए वादी द्वारा दायर मुकदमा सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 के तहत निर्धारित सीमा के भीतर था।

53. यह हमें अंतिम प्रश्न पर ले जाता है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा मुकदमे को खारिज करने वाले विचारण न्यायालय कोर्ट के फैसले/डिक्री को उलट कर वादी के पक्ष में समझौते के विनिर्दिष्ट पालना को मंजूरी देना उचित था।

54. हम देख सकते हैं कि एसएलपी का नोटिस अनिवार्य रूप से मामले में उत्पन्न होने वाले दो कानूनी मुद्दों की जांच करने के लिए जारी किया गया था जैसा कि

ऊपर चर्चा की गई है। इन दो मुद्दों से निपटा गया है और अपीलकर्ताओं के खिलाफ जवाब दिया गया है। हालाँकि, चूंकि अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ वकील ने भी अन्य सभी तथ्यात्मक मुद्दों पर उच्च न्यायालय के निष्कर्ष की वैधता और शुद्धता पर सवाल उठाया था, इसलिए, हमने अन्य मुद्दों की भी जांच की है।

55. अपीलकर्ताओं के वरिष्ठ वकील ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय का प्रतिवादी संख्या 1 को रोकना उचित नहीं था। मूल्य के अनुरूप वाद मकान का वास्तविक क्रेता नहीं था। एक और दलील यह थी कि वादी समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक नहीं थी; और अंत में उसकी दलील यह थी कि समझौते के निष्पादन और प्रतिवादी संख्या 2 को 50 हजार रुपये का आंशिक भुगतान करने के बावजूद वादी का कभी भी वादगस्त मकान पर वास्तविक कब्जा नहीं था। अपीलकर्ताओं के लिए वरिष्ठ वकील ने इन तथ्यात्मक प्रस्तुतियों पर उपरोक्त दो कानूनी मुद्दों की तरह समान बल के साथ आग्रह किया।

56. हमारी सुविचारित राय में, सीपीसी की धारा 96 के तहत पहली अपील की सुनवाई करते समय उच्च न्यायालय तथ्यों/कानून पर अपील का अंतिम न्यायालय था, सबूतों की सराहना करने की अपनी शक्तियों के भीतर था और मुकदमे विचारण न्यायालय के निर्णय से स्वतंत्र अपने निष्कर्ष पर आया था कोई भी इस कानूनी प्रस्ताव पर विवाद नहीं कर सकता है कि विनिर्दिष्ट पालना का अनुदान/अस्वीकार एक विवेकाधीन राहत है, और इसलिए, एक बार अनुदान के लिए लागू कानूनी सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, साक्ष्य की सराहना पर अपीलीय अदालत द्वारा इसे प्रदान किया जाता है तो आगे अपील की जाती है। अदालत को ऐसे निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने में धीमा होना चाहिए, जब तक कि निष्कर्ष या तो कानून के स्थापित सिद्धांत के विरुद्ध न पाया जाए, या मनमाना या विकृत न हो।

57. अनुच्छेद 136 के तहत अपील की सुनवाई करते समय यह न्यायालय प्रथम अपीलीय न्यायालय की तरह संपूर्ण नेत्र/दस्तावेजी साक्ष्य की फिर से सराहना करने के लिए इच्छुक नहीं है, जब तक कि ऊपर देखे गए मापदंडों को मामले में सफलतापूर्वक लागू नहीं किया जाता है। ऐसा कोई इस तरह का मामला नहीं लगता.

58. उच्च न्यायालय ने, हमारी सुविचारित राय में, वादी के पक्ष में निष्कर्ष दर्ज करने के साक्ष्य की उचित सराहना की कि वह समझौते के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक थी और वास्तव में, सबसे पहले, रूपये 50 हजार का अग्रिम भुगतान किया और फिर शेष रूपये तीन लाख बिक्री प्रतिफल के प्रतिवादी संख्या 2 को भुगतान किया; समझौते के अनुसार उस वादी को प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा वाद घर के कब्जे में रखा गया था; और, अंत में प्रतिवादी नं. 2 ने समझौते का अपना हिस्सा पूरा नहीं किया।

59. यह उल्लेख करना उचित है कि यह मानने के बावजूद कि वादी ने संपूर्ण बिक्री प्रतिफल रुपये 3,50,000/- का भुगतान किया है। उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 2 को रूपये 3,50,000/- से अधिक रूपये 4 लाख का अतिरिक्त बिक्री प्रतिफल भुगतान करने का निर्देश दिया। हालाँकि इस निष्कर्ष को प्रस्तुत करते समय उच्च न्यायालय द्वारा कोई कारण नहीं बताया गया था, लेकिन ऐसा लगता है कि ऐसा या तो पक्षकारो के बीच समता का संतुलन बनाने के लिए किया गया होगा और/ या प्रतिवादी संख्या 2 को अचल संपत्तियों की कीमतों में वृद्धि के कारण उसे हुआ नुकसान का मुआवजा देने के लिए ।

60. जैसा भी हो, चूंकि वादी ने इन अपीलों में कोई अपील या क्रॉस आपत्ति दर्ज करके इस निष्कर्ष को चुनौती नहीं दी है, इसलिए यह न्यायालय प्रतिवादियों द्वारा दायर इन अपीलों में इसकी शुद्धता पर जाने से बचता है।

61. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमें अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा आग्रह की गई दलीलों में कोई योग्यता नहीं मिलती है और तदनुसार हम योग्यता से संबंधित मुद्दों पर उच्च न्यायालय के निष्कर्षों को बरकरार रखते हैं।

62. समापन से पहले हम दो और मुद्दों पर ध्यान देना उचित समझते हैं। उच्च न्यायालय ने डिक्री पारित करते हुए दोनों प्रतिवादियों यानी वादग्रस्त मकान के मालिक (विक्रेता) प्रतिवादी नंबर 2 और उसके बाद के खरीदार (प्रतिवादी नंबर 1) को संयुक्त रूप से वादी के पक्ष में वादग्रस्त मकानकी बिक्री विलेख निष्पादित करने का निर्देश दिया। किसी भी कानूनी जटिलता से बचने के लिये, बशर्ते कि वादी रूपये 3,50,000/- से अधिक चार लाख रूपये का भुगतान वादग्रस्त मान के मालिक (प्रतिवादी संख्या 2) को करेगा।

63. इस प्रकृति की एक दिशा अनुमेय है. इस न्यायालय द्वारा वर्ष 1954 में लाला दुर्गा प्रसाद और अन्य बनाम लाला दीप चंद और अन्य, एआईआर 1954 एससी 75 के मामले में यह व्यवस्था दी गई थी, जिसमें विद्वान न्यायाधीश विवियन बोस न्यायाधिपति, जो अपनी अभिव्यक्ति की सूक्ष्म शक्ति और लेखन की विशिष्ट शैली के लिए जाने जाते हैं, ने पीठ के लिए बोलते हुए निम्नानुसार बात कही:

"हमारी राय में, डिक्री का उचित रूप विक्रेता और वादी के बीच अनुबंध के विनिर्दिष्ट पालना को निर्देशित करना है और बाद के हस्तांतरणकर्ता को कन्वेंस में शामिल होने का निर्देश देना है ताकि वादी को उसके पास मौजूद शीर्षक पर पारित किया जा सके। वह वादी और उसके विक्रेता के बीच बनी किसी भी विशेष संविदा में शामिल नहीं होता है; वह जो कुछ करता है वह वादी को अपना हक हस्तांतरित करना होता है। कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा इसी मार्ग का पालन काफिलाद्दीन बनाम समीराद्दीन एआईआर 1931 कलकत्ता 67 में किया गया था और यह अंग्रेजी प्रथा प्रतीत होती है।

विनिर्दिष्ट पालना पर फ्राई देखें, छठा संस्करण, पृष्ठ 90, अनुच्छेद 207; पॉटर बनाम सैंडर्स 67 ई.आर. 1057 भी। हम तदनुसार निर्देशन करते हैं।"

64. हम सम्मानपूर्वक इन टिप्पणियों का पालन करते हैं और तदनुसार बिक्री विलेख के निष्पादन के लिए उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देश को बरकरार रखते हैं।

65. हालाँकि, मामले का एक और पहलू है जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है और यह मामले में उच्च न्यायालय द्वारा वादी के पक्ष में आक्षेपित डिक्री पारित करने और इस न्यायालय द्वारा बरकरार रखे जाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ है।

66. डिक्री के संदर्भ में प्रतिवादियों द्वारा वादी के पक्ष में विक्रय विलेख के निष्पादन का प्रभाव स्पष्ट रूप से मालिक (प्रतिवादी संख्या 2) और बाद के क्रेता (प्रतिवादी संख्या 1) के बीच वादग्रस्त मकान की बिक्री के अनुबंध को रद्द कर दिया जाएगा। कारण तलाश करने के लिए दूर नहीं है।

67. प्रतिफल के लिए अचल संपत्ति की बिक्री के अनुबंध में, यदि कोई विक्रेता, किसी भी कारण से, बिक्री मूल्य पर प्रतिफल प्राप्त होने पर क्रेता को शीर्षक हस्तांतरित करने में विफल रहता है, तो विक्रेता को बिक्री प्रतिफल को अपने पास रखने का कोई अधिकार नहीं है और उसे इसे क्रेता को वापस करना होगा। जब अनुबंध विफल हो जाता है तो अनुबंध के पक्षों को उनकी मूल स्थिति में बहाल किया जाना चाहिए जो कि अनुबंध के निष्पादन से पहले मौजूद थी, बशर्ते अनुबंध में इसके विपरीत कोई विशिष्ट शब्द न हो।

68. प्रतिवादी संख्या 2 और प्रतिवादी संख्या 1, अर्थात, मालिक और उसके बाद के क्रेता के बीच का अनुबंध, आक्षेपित निर्णय/डिक्री के कारण विफल हो गया है क्योंकि अब प्रतिवादी संख्या 2, प्रतिवादी संख्या 1 को वादग्रस्त मकान बेचने की स्थिति में नहीं होगा। हालांकि उसने अपने पक्ष में वाद मकान की ऐसी बिक्री के लिए प्रतिवादी

नंबर 1 से 4 लाख रुपये प्राप्त किए हैं। इस कारण से, प्रतिवादी संख्या 2 प्रतिवादी संख्या 1 को 4 लाख रुपये वापस करने के लिए उत्तरदायी है।

69. हालाँकि यह मुक़दमा वाद मकान के परस्पर मालिक और उसके बाद के खरीदार के बीच नहीं है, फिर भी पक्षकारो के बीच पर्याप्त न्याय करने और इस लंबी मुकदमेबाजी का अंत देखने और प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा एक नया मुकदमा शुरू करने से रोकने के लिए है। बिक्री प्रतिफल की वापसी के लिए प्रतिवादी नंबर 2 के खिलाफ, जिस पर निर्णय लेने में फिर से कई साल लगेंगे और आखिरकार जब न तो इसमें तथ्यों का कोई जटिल निर्णय शामिल होगा, न ही यह पार्टियों के लिए कोई पूर्वाग्रह पैदा करने वाला है, तो हम इसे लागू करना उचित और उचित मानते हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति और तदनुसार प्रतिवादी नं. 2 (सूट हाउस के मालिक) को रुपये 4 लाख प्रतिवादी संख्या 1 को आक्षेपित निर्णय/डिक्री के अनुसार वादी के पक्ष में उनके द्वारा विक्रय विलेख के निष्पादन के तीन महीने के भीतर वापस करने के निर्देश दिये जाते है।

70. हम यह भी निर्देश देते हैं कि तीन महीने के भीतर राशि वापस करने में विफलता पर इस आदेश की तारीख से वसूली तक अवैतनिक राशि पर 9% की दर से ब्याज लगाया जाएगा और प्रतिवादी संख्या 1, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा भुगतान न करने की स्थिति में, प्रतिवादी संख्या 2 के विरुद्ध लेवी निष्पादन का हकदार होगा, इस आदेश को कानून के अनुसार उचित निष्पादन न्यायालय में डिक्री मानते हुए दिए गए ब्याज सहित बकाया धन की वसूली के लिए।

71. हालाँकि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने यह निर्देश इसलिए दिया है क्योंकि इस न्यायालय के पास ही किसी उचित मामले में ऐसे निर्देश पारित करने की

शक्ति है और हमारे विचार में, यह एक ऐसा मामला है जिसमें हम ऐसा करना उचित समझते हैं, ताकि सभी पक्षों को न्याय की पर्याप्त कार्रवाई की जा सके।

72. उपरोक्त कारणों और निर्देशों के अनुसार, इन अपीलों का तदनुसार निपटारा किया जाता है। कोई लागत नहीं.

अपीलें निस्तारित की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल सुवास की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता नृपेन्द्र सिनसिनवार द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिये स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उददेश्य के लिये इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उददेश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उददेश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।